Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852; Impact Factor: RJIF 5.44
Received: 01-07-2020; Accepted: 15-07-2020; Published: 02-08-2020
Volume 1; Issue 2; 2020; Page No. 21-22

हिन्दी भाषा के विकास में फिल्मों का योगदान

मोहम्मद अलीखॉन
हिन्दी प्राध्यापक, विवेकानंदा महाविद्यालय, करीमनगर जिला, तेलंगाना, भारत

प्रस्तावना

समाज में जो घटित होता है, वह किसी न किसी रूप में हमारे सामने कवि अपने काव्य के द्वारा और निदेशक अपनी फिल्मों तथा धारावाहिकों के द्वारा प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। लेकिन दोनों का उद्देश्य समाज को शही दिशा दिखाने का ही रहता है, क्योंकि दर्शक हो या पाठक हो, दोनों उसी दृश्य को देखना पसंद करते हे, जिससे उनका कल्याण हो और होता भी वही है। यदि एक सच्चा साहित्य सन्य शिव सुंदर की भावना नहीं रखता और एक निर्देशक अपनी फिल्मों के जरिए समाज को कोई शिक्षा नहीं देता तो उस फिल्म के प्रति लोगों की रूचि नहीं होगी। सबसे पहले हम ऐसे ही साहित्य को देखते है। जिनमें समाज में फैली कुरीतियों पर सीधा कुठाराधात किया गया हो और सच्चाई से हमको परिचित कराया हो।

आज जहाँ सिनेमा और साहित्य एक अपने विस्तुत रूप को प्राप्त हो रहा है। वही उसमें हमे कुछ बुराईयाँ भी नजर आती हैं, जबकि रचनाओं में उस प्रकार का दोष नहीं मिलता। शब्दों में ही वह शक्ति होती है जो पाठक की भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं में उफान ला सकते हैं। लेकिन आधुनिक तकनीक द्वारा सिनेमा दर्शकों के सामने ऐसी तस्वीर पेश करता है जो शब्दों की पहुँच से बाहर है। साहित्यक कथानक के आधार पर बनी अधिकांश फिल्में लोकप्रिय होती है या भी कहा जा सकता है कि फिल्मीकरण तभी सफल होता है जब लेखक और फिल्मकार एक ही प्रृष्ट भूमि के हो और दोनों में अच्छा ताल मेल हो।

साहित्य और सिनेमा की अपनी–अपनी सीमाएँ हैं इन सीमाओं को पार करने से साहित्य, साहित्य नहीं रहता और फिल्म तो चौपट से ही जती है। फिल्म में दुश्य चलती रेलगाडी के समान त्वरित गाति से आते–जाते रहते हैं और सभी दर्शको पर उनका प्रभाव लगा भग एक समान होता है। सिनेमा के पास सबसे बड़ी शक्ति ध्वनि और प्रकाश का माध्यम है। इससे वह तरह–तरह के प्रभाव उत्पल करता है।

14 मार्च 1931 का दिन भारतीय सिनेमा के लिए एक अविस्मरणीय दिन है। इसी दिन देश की पहली बोलती फिल्म (टोकी) 'आलम आश' मुंबई के मैजेस्टिक सिनेमा घर में प्रदार्शित हुई थी। इससे पहले मुक फिल्मों का और चला आ रहा था। पश्चिमी देशों में फिल्मों और उनके गीतों–संगीतों का अपना–अपना अस्तित्व रहा है। वहाँ की फिल्मों में गीत–संगीत का चलन उस तरह नहीं है। जैसा हमारे यहाँ है। फिल्में यदि समाज का आईना है तो फिल्मी गीत–संगीत मानव मन का दर्पण है। जैसे–जैसे अलग–अलग भाषाओं का जन्म हुआ, तदनाक्सार अपनी–अपनी भाषा की समानताऐं और विशेषताएँ लिए हुए अलग–अलग नाट्य शैलियाँ विकसित हुई।

भारत की पहली 'फुल लोंग्य स्टोरी फिल्म' का निर्माण धुंडीराज गोंविंद फालके, जिन्हें आज दादा साहब फालके के नाम से जाना जाता है, ने किया। 'राजा हरिशचंद' नामक यह फिल्म 21 अप्रैल 1913 को मुंबई के कोरोनेशन सिनेमाघर में प्रदर्शित हुई और यही से मूक सामाजिक फिल्मों की शुरूआत हुई।

सिनेमाई हिन्दी (भाषा) को लेकर हम संभवतः इस कारण संजीदा नहीं है। क्योंकि सिनेमा विद्या को ही हमारे बुद्धिजीवियों के कभी गंभीरता के नहीं लिया। सिनेमा में प्रयुक्त हिन्दी भाषा तथा साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी भाषा में काफी अंतर है। ज्ञाताव्य है यह अंतर है।

सिनेमा, साहित्य और समाज के अंतर्सनंध – डॉ राकेश कुमार शर्मा ज्ञातव्य है यह अंतर अन्य भाषाओं, अंग्रजी, बागंला, तसि, मलयालय आदि में उतना नहीं है। अतः इन भाषाओं को अपने सिनेमा में यह नहीं हो पाया। मौरे रूप में इसके दो–तीन कारण लिए जा सकते हैं। क्या हिन्दी सिनेमा का दर्शक वर्ग उतना ही साक्षर एंव कुछ सीमा तक प्रबुद्ध है, जितना अंग्रेजी, फ्रेंच, जापानी, पोलिश, चाईनीस, बंगला, मलयालम आदि का है।

हिन्दी भाषा को सबसे अधिक किसी माध्यम ने बदला है, तो वह है सिनेमा। सिनेमा की हिन्दी को भाषा विज्ञानियों ने अनेक नाम दिए हैं। कुछ विद्वानों ने इसे मोंताजी हिन्दी कहा है। फिल्मों की इस हिन्दी में अंग्रेजी, पंजाबी, भोजपुरी, मराठी और अन्य अनेक भाषाओं के संवादो से भाषा प्रभावशाली और रोचक बनाई जाती है।

सिनेमा का मुख्य उदृश्य मनोरंजने है। सामाजिक शिक्षा और जनजागरण और संदेश सिनेमा के दूसरे सहायक उदृश्य है। मनोरंजन के उदृश्य के कारण ही इसकी भाषा भी मनोरंजन पुर्ण है। इसमें साहित्य की अति गंभीरता और किलष्टता नहीं है। वह आम श्रोता की भाषा है, जो उसकी समक्ष में आसानी से आ जाती है। फिल्मों कि भाषा ऐसी होनी चाहिए जो इस उम्र के समयांतराल के दूरी को कम कर सके और सभी के लिए ग्राह्य हो। पत्र–पत्रिकाओं में तो भाषिक प्रयोग देखने और पढ़ने को मिल जाते हैं। मात्र शाषा को समझने के लिए कोई भी दर्शन फिल्म को सिनेमा में जाकर बार–बार देखे या फिर अपने घर में देखे यह आज तक भी देखने में नहीं आया है और फिर भी फिल्मों की भाषा को समझने के लिए ध्वनि और चित्र भी दशर्द्यकों की मदद करते है।

सिनेमा की हिन्दी में भाषा परिवर्तन पत्र–पत्रिकाओं और टेलिविजन की हिन्दी से पुराना है। फिल्मों में गति और संवादों में ही भाषिक परिवर्तन हो रहे हैं। संगीत और चित्रों की भाषा तो समझी ही जा सकती है, उसे शब्दिक रूप नहीं दिया जा सकता।

संदर्भ सूची

1. सिनेमा, साहित्य और समाज के अंतर्संबंध – डॉ. राकेश कुमार शर्मा
2. वाक त्रैमासिक पत्रिका अंक–3 पृ. 37, संपादक–सुधीश पचौरी
3. वाक त्रैमासिक पत्रिका अंक–3 पृ. 38, संपादक–सुधीश पचौरी
4. वाक त्रैमासिक पत्रिका अंक–3 पृ. 38, संपादक–सुधीश पचौरी